# गोपनीयता की ओर बढ़ती सरकार

प्रजातंत्र का आधारस्तंभ पारदर्शिता है , परंतु भारत के वर्तमान संदर्भ में इसे गोपनीयता के आवरण से ढंका जा रहा है। दुर्भाग्यवश , गोपनीयता की बढ़ती संस्कृति को पारदर्शिता का छदम रूप भी दिया जा रहा है।

- सबसे पहला उदाहरण चुनावी बांड का लिया जा सकता है। 2017 में सरकार ने पारदर्शिता के नाम पर इसकी शुरूआत की। इस प्रावधान में राजनीतिक दलों को अनेक गुमनामी दान दिए जा सकते हैं। दानदाता का नाम गोपनीय रखा जाता है। चुनाव आयोग ने केंद्र के इस कदम की घोर निंदा करते हुए इसे “प्रतिगामी कदम” बताया था। चुनाव आयोग ने इसके लिए जन प्रतिनिधित्व कानून की धारा 29 बी का हवाला देते हुए कहा था कि इससे इस कानून का कोई महत्व नहीं रह जाएगा। अभी तक यह कानून राजीनितिक दलों को सरकारी और विदेशी कंपनियों से दान लेने पर रोक लगाता था।

  दूसरे , इन बांड से कंपनी अधिनियम (2013) में अपने तीन वित्तीय वर्षों के शुद्ध औसत लाभ का 7.5% दिए जाने की सीमा का भी अतिक्रमण हो सकता है।

- गोपनीयता के दौर ने सूचना के अधिकार पर भी प्रहार किया है।

1. सरकार ने 2014 के बाद 2016 और 2018 में मुख्य सूचना आयुक्त की नियुक्ति नहीं की है। सूचना आयोग के कुल 11 पदों में से केवल 7 ही भरे हुए हैं।

2. सरकार ने सूचना के अधिकार के अंतर्गत दी जाने वाली अनेक सूचनाओं पर रोक लगा दी है।

3. 2019 में सरकार ने मुख्य सूचना आयुक्त के अनेक अधिकारों को सीमित कर दिया है। उनके निश्चित कार्यकाल की सीमा को हटा दिया गया है। यहां तक कि उनका वेतन भी सरकार के हाथ में है।

- 2014 के व्हिसलब्लोअर संरक्षण अधिनिमय को तरल कर दिया गया है। अब उन दस्तावेजों को रखने के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है , जिन पर शिकायत की गई है।

- सरकार ने अपने प्रथम कार्यकाल में जीडीपी के आंकड़े जारी किए थे। इसमें राष्ट्रीय सांख्यिकीय आयोग और भारत के मुख्य सांख्यिकीविद् को विश्वसनीयता के संकट का सामना करना पड़ा था।

- विकास दर के आंकड़ों को इतनी बार बदला गया कि 2019 में 108 समाज विज्ञानियों ने "सांख्यिकीय संगठनों में संस्थागत निर्भरता और अखंडता को पुनर्स्थापित करने" हेतु सरकार को खुला पत्र लिखा था।

- राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की रिपोर्ट बहुत विलंब के बाद प्रकाशित की जा रही हैं। भीड़ की हिंसा और 'धर्म के आधार पर की गई हत्याओं' की अब गणना नहीं की जाती है। और पुलिस बलों में धार्मिक समुदायों के सदस्यों की संख्या सूचीबद्ध नहीं है।

- नेशनल सैंपल सर्वे ऑफिस भी इससे अछूता नहीं है। 2019 में लगभग 200 विशेषज्ञों ने उपभोक्ता व्यय के 75वें दौर के सर्वेक्षण को जारी करने के लिए सरकार को लिखा था। इसमें पाया गया था कि 2011-12 और 2017-18 के बीच गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले नागरिकों का प्रतिशत बढ़ गया था।

इस वर्ष , नकारात्मक वृद्धि को पंजीकृत किया जाना आवश्यक है। सच्चाई को छुपाने से तथ्य बदतर हो जाएंगे , क्योंकि अर्थव्यवस्था के वास्तविक कर्ताधर्ता स्थिति के साथ तालमेल बिठाने में सक्षम नहीं होंगे। पारदर्शिता की अनिवार्यता न केवल लोकतांत्रिक राजनीति , बल्कि अर्थव्यवस्था के लिए भी जरूरी है। तथ्य भले ही अप्रिय हो , परंतु उन्हें जानना राष्ट्र के हित में है।

**'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित क्रिस्टोफ जाफ्रेलॉट के लेख पर आधारित। 24 सितंबर , 2020**